

ISSN : 2395-4132

THE EXPRESSION

An International Multidisciplinary e-Journal

Bimonthly Refereed & Indexed Open Access e-Journal



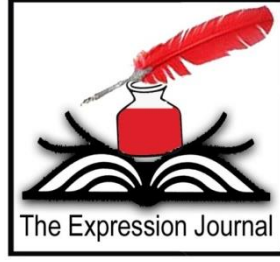
Impact Factor 3.9

Vol. 8 Issue 5 October 2022

Editor-in-Chief : Dr. Bijender Singh

Email : editor@expressionjournal.com

www.expressionjournal.com



**भारतीय काव्यशास्त्र की प्रशाखा के रूप में
सौन्दर्यशास्त्र एवं कवित्व शिक्षा
डॉ. मुकेश कुमार शर्मा
राजकीय संस्कृत महाविद्यालय
फागली, हिमाचल प्रदेश**

.....

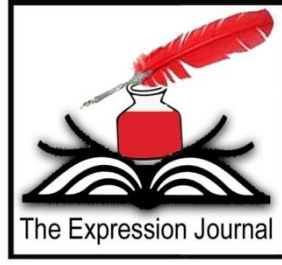
सारांश

काव्यशास्त्र के छः संप्रदाय में कवि की प्रतिभा को सभी ने स्वीकार है इससे यह ज्ञात होता है कि कवि की प्रतिभा शिक्षा के बिना संभव नहीं है और शिक्षा अभ्यास के बिना नहीं संभव है इसलिए शायद ममता ने अपने काव्य शास्त्र में कहा है कि लोक शास्त्र काव्य की शिक्षा अभ्यास के कारण ही कई प्रतिभाशाली एवं शक्ति प्राप्त करता है अन्यथा वह यशस्वी नहीं बन सकता इसलिए निष्कर्ष यही है कि कविता में शिक्षा और शिक्षा में अभ्यास का होना अति आवश्यक है जो यह सिद्ध करता है की काव्य शास्त्र में शिक्षण अभ्यास कवि को आवश्यक है जो उसे प्रतिभा दिलाता है

कुंजी शब्द

सौंदर्य, शास्त्र, रस, काव्य, अलंकार, वक्रोक्तता, रीति, ध्वनि, औचित्य, शब्द, नाटक,
कविता, शिक्षा, अभ्यास, कवि, प्रतिभा, कौशल

.....



भारतीय काव्यशास्त्र की प्रशाखा के रूप में
सौन्दर्यशास्त्र एवं कवित्व शिक्षा
डॉ. मुकेश कुमार शर्मा
राजकीय संस्कृत महाविद्यालय
फागली, हिमाचल प्रदेश

.....

सौन्दर्य एवं कवित्व वस्तुतः एक-दूसरे का पूरक ही हैं। जहाँ सौन्दर्य होगा वहाँ कवित्व होगा, जहाँ कवित्व है वहाँ सौन्दर्य है ही। उस परब्रह्म की सृष्टि में सौन्दर्य सर्वत्र बिखरा है। पारस्वी दृष्टि उस पड़ती है और काव्य फूट पड़ता है। पर भारतीय मनीषा विश्व में यही पहचान रखती है कि यहाँ सृष्टि के छोटे-बड़े सभी पक्षों पर बड़ी है। गहराई से दार्शनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, धार्मिक आदि विश्लेषण करके। सुक्ष्म दर सूक्ष्म दृष्टि से सभी तत्वों का विवेचन हुआ है। भारतीय ऋषितुल्य विद्वानों ने वैचारिक प्रकाश पूर्व युगबोध करके जो श्रृंखला दी वह सत्यं शिवं सुन्दरं के माध्यम से आनंद वारिक प्रकाश पार करते हुए मनुष्य को पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति में सहायक हो सकती है। इस प्रनंद व कल्याण का की के लेकर जिससे भारतकार विचारक जान इसे हुए इतनी हल्की हो गई कि वैचारिक आकाश में बहुत-बहुत ऊँचे उठती चली गई व विश्व में भी पुरे प्रकाश बिखरने की सामर्थ्य वाली हुई।

यों तो सौन्दर्यशास्त्र नाम से कोई शास्त्र नहीं है, हाँ, शास्त्रों में वर्णित ६४ कलाओं की चर्चा को सौन्दर्य-शास्त्र कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। कला का अर्थ ही है सौन्दर्य का डेरा। प्रस्तुत विषय काव्य से जुड़ा होने के कारण काव्यगत सौन्दर्य की चर्चा की ओर संकेत करता है। काव्यशास्त्र तो दर्य-युक्त-विचार विनिमय से ही आद्योपान्त भरा है। कविहृदय जैसा अनुभव करता है वैसी भिव्यक्ति हो जाती है। वही काव्य कहलाता है। इस प्रकार अग्निपुराण में कवि प्रजापति कहलाया-

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः । यथारमै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥

आगे चलकर आचार्य मम्मट ने तो कवि की सृष्टि को ब्रह्मा की सृष्टि से उत्कृष्ट बताया-

नियतिकृतनियमरहितां ह्यदकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।

नवरसरुचिरां निर्मितमादधती भारती कवेर्जयति ॥

(श्लोक १, पृष्ठ ५, काव्यप्रकाश) जैसी कि मान्यता है वेदों से काव्यचर्चा आरम्भ होते हुए प्रमुख पाँच कालों-

१. प्रारम्भिक निर्माण युग (प्रारम्भ से भरत तक),
२. अन्वेषण एवं रचना युग (भरत से आनन्द तक),
३. काव्यतत्त्वचिंतन युग (आनन्द से मम्मट तक),
४. समन्वय युग या व्याख्याकाल (मम्मट से जगन्नाथ तक),
- ५, आधुनिक युग (जगन्नाथ के पश्चात्) में विभक्त होती, परिवर्धित व परिपुष्ट होती हुई काव्य के सौन्दर्यभूत

आत्मतत्त्व या चैतन्यस्वरूप रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति या ध्वनि के मत- मतान्तरों के कारण ७ प्रमुख सम्प्रदायों में उभरी :

१. रस सम्प्रदाय-प्रवर्तक भरत, २. अलंकार सम्प्रदाय प्रवर्तक भामह, ३. रीति सम्प्रदाय प्रवर्तक वामन, ४. वक्रोक्ति सम्प्रदाय प्रवर्तक कुन्तक, ५. ध्वनि सम्प्रदाय प्रवर्तक आनन्दवर्धन।

इतने वैज्ञानिक अध्ययनों में आचार्य विद्वानों ने काव्य के शब्दार्थरूप शरीर के साथ ही काव्य के आत्मतत्त्वरूप ध्वनि, रस, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति आदि के संबंध में मत प्रस्तुत किए व काव्य संबंधी गुण-दोषों का विस्तृत विवेचन किया, जिससे गुणों का समावेश व दोषों का निराकरण होते हुए निर्दुष्ट काव्यरचना हो सके। आचार्य मम्मट तक आते-आते यह काव्यशास्त्रीय चर्चा सुव्यवस्थित सुनियोजित- सी जान पड़ी विद्वत्समाज को। 'तददोषो शब्दार्थो सगुणावनलंकृति पुनः त्वापि' (सूत्र १, पृष्ठ १९, काव्यप्रकाश) से प्रारम्भ करके आचार्य ने काव्य संबंधी सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर यथोचित विचार- विमर्श के साथ ही ३ शब्दशक्तियों अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना की चर्चा करते हुए पूर्व के सभी आचार्यों के मत-मतान्तरों को समायोजित करते हुए 'ध्वनि' मत को पुष्ट किया। उन्होंने जैसा विचार रखा कि कवि ६ प्रयोजनों- १. यश, २. धन, ३. व्यावहारिक ज्ञान, ४. शिवेतर क्षति, ५. सद्यः परनिर्वृति, ६. कान्तासम्मित उपदेश हेतु रचना करता है-

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥ (श्लोक २, पृष्ठ १०, काव्यप्रकाश)

काव्य के तीन हेतु कहे-

शक्तिनिपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् काव्यज्ञशिक्षाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥ (श्लोक ३, पृष्ठ १६, काव्यप्रकाश)

इन सबके माध्यम से अंततः लक्ष्य यही है कि पाठक या श्रोता को चरमानंद की, विगलित- वेदान्तरूप रसानुभूति हो सके। यह तभी संभव होगा जब सामाजिक को काव्य या रचना में कोई चमत्कार या प्रभावित करने वाले तत्व दृष्टिगोचर होंगे। विद्वानों ने उन चमत्कार उत्पन्न करने वाले तत्वों में कभी रस को गिनाया, कभी अलंकार, रीति या वक्रोक्ति को। इस विषय में जैसा कि विचार हो भी चुका है, प्रचलित सम्प्रदाय वस्तुतः एक-दूसरे के पूरक ही हैं। अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि से रस ही ध्वनित या पुष्ट होता हुआ सामाजिक को, स्थायी भावों के अनुकूल अवस्था में आ जाने पर अनुभव में आता है, तभी उसे परमानंदरूप रसानुभूति होती है। "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस- निष्पत्तिः। अनेक वैज्ञानिक व्याख्याओं के पश्चात् जो तीन प्रकार का ध्वनिरूप तत्त्वज्ञान चिन्तकों को हाथ लगा, वहाँ (१) वस्तुध्वनि, (२) अलंकारध्वनि तथा (३) रसध्वनि में आरम्भिक दो का अन्तर्भाव, को रसध्वनि में माना गया, वह उचित ही तो है। प्रथम तो यह कि ध्वनि से ही काव्य में सौन्दर्य आता है वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ ही उत्तम है, जो कहा जाय वह तो कहा ही गया, इसमें क्या विशेष बात, विशेष तो वह जो शब्द से नहीं कहा गया फिर भी समझ में आए ध्वनित हो सके, जिसे काव्यशास्त्र में घंटे के अनुरणन से कहा गया। ध्वनि ही प्रभावित करने की सामर्थ्यवाली होती है। शेष शब्द उसी में ही समाहित हो जाते हैं, उससे आवृत हो जाया करते हैं।

सिंहशिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभितिषु गजेषु। प्रकृतिरियं सत्त्वतां न खलु वयस्तेजसां हेतुः ॥

प्रस्तुत श्लोक में, तेजस्विता की दृष्टि से आयु महत्व नहीं रखती, भर्तृहरि ने जो इस वस्तुरूप तत्व को समावेशित किया, यहाँ वस्तु ध्वनित हो रही है, साथ ही वीररस भी ध्वनित हुआ, पुष्ट हुआ।

अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरःसरः । अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः ॥

यहाँ समासोक्ति अलंकार ध्वनित ही हुआ है। अतः उसका भी ध्वनि में ही पर्यवसान है।

मा निषाद प्रतिष्ठास्त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।

यह काव्य का स्रोतरूप श्लोक करुणरस को ही ध्वनित कर रहा है।

इस प्रकार वस्तु, अलंकार, रस काव्य में जब ध्वनित हों, तो वह ध्वनि-काव्य अपनी उत्कृष्ट व्यञ्जकता से सामाजिकों को प्रभावित करता है। अतः काव्यगत सौन्दर्य ध्वनि में ही निहित है।

सौन्दर्य ही चमत्कृत करता है। चमत्कार मनुष्य को प्रभाव में लेता है। प्रभावित करने वाले का स्तर तो सामाजिकों की दृष्टि में ऊँचा होता ही है। कवि काव्य-सृजन यश, धन, व्यवहार, शिवेतरक्षति, सद्यः परनिवृत्ति व कान्तासम्मित उपदेश के प्रयोजन से ही तो करता है, जैसा आचार्य मम्मट ने कहा है।

यदि दो दीवार हो जिसमें एक पर दर्पण लगा दिया जाय, तो दर्पणहीन की अपेक्षा दर्पणयुक्त दीवार का सौन्दर्य बढ़ ही जाता है। इसी प्रकार यदि उसी दर्पण को विशेष कोणों में व्यवस्थित किया जाय, तो जिस प्रकार वह सहस्रों प्रतिबिंबों को दर्शाता हुआ सौन्दर्य में सहस्रगुणा वृद्धि करता है, उसी प्रकार ध्वनि युक्त काव्य है, जिसकी गूँज दूर-दूर तक सौन्दर्य बिखेरते हुए काव्य की रचना करने वाले के यश को बढ़ाती है और पाठक या श्रोता को आह्लादित भी करती है।

इसके साथ ही कुछ समस्याएँ भी उभरती हैं कि क्या कवि व उसके पाठक या श्रोता का बौद्धिक स्तर समान होना आवश्यक है। यदि ऐसा निश्चित नहीं होगा तो रसानुभूति में अधिकता या कमी आसकती है जैसा कि आमतौर पर अनुभव में आता है। ऐसे में 'सद्यः परनिवृत्ति' रूप प्रयोजन का क्या होगा? कई बार ऐसा भी प्रतीत होता है कि न जाने कवि ने किन विशेष परिस्थितियों में क्या अनुभव किया, वह क्या बताना चाहता है, उसका अनुकरण संपूर्ण रूप से पाठक या श्रोता द्वारा हुआ भी या नहीं, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

दूसरे, क्या सामाजिक परिवेश व मनःस्थिति रसास्वादन में कारण नहीं होती, होती तो है तभी विशेषोक्ति व विभावना जैसे अलंकार आलंकारिकों द्वारा रचे गए कभी एक ही रचना से अत्यंत आनन्द, दूसरी बार बिल्कुल नहीं। तीसरी बात, क्या सम्भ्रान्त व दीन-हीन, शिक्षित व निरक्षरों को 'रसानुभूति' एक सी ही अर्थात् एक ही स्तर वाली हुआ करती है। यदि नहीं तो क्या उच्चस्तरीय रचनाकार को अपना स्तर गिराना होगा या क्या वह पहले अपने पाठक या श्रोता का स्तर ऊँचा करेगा। अन्यथा यह स्पष्ट होता है कि विशेष वर्ग के कवियों के श्रोता या पाठकों का भी विशेष वर्ग ही हुआ करता है। कालिदास की रचना का आनन्द संपूर्ण वर्ग या ग्रामीण अंचल का श्रोता या पाठक तो नहीं ले सकता।

साथ ही यह भी कि रसानुभूति कैसे होती है, के विषय में जो इतना गहरा चिंतन हुआ, उससे कदाचित् सामाजिकता का कोई सरोकार है ही नहीं। उसके स्थायीभाव जो अत्यन्त सुप्तावस्था में हैं व अन्य भावों से आवृत हैं, वे विभावादि के संयोग से अनुकूल वातावरण के कारण जागृत होकर अनुभव में आ जाते हैं और उसे परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है।

जहाँ तक प्रस्तुत विषय सौन्दर्य एवं काव्य का प्रश्न है, तो काव्य में वस्तु व अलंकार भी अंततः रस को ही पुष्ट करके उसे ध्वनित कर देता है, जो आनंदरूप सुख की प्राप्ति कराता है। जहाँ तक कवियों की उत्तमता की बात है। रचनाकार काव्यगत सौन्दर्यानुभूतिरूप आनंद का स्तर जितना उन्नत कर पाता है, वह श्रोताओं या पाठकों के लिए उतना ही आदरणीय बन जाता है।

निष्कर्ष यह है कि आनंद (रूप कारण) उठाता है रचनाकार का स्तर, उसके पाठक, श्रोता या दर्शक की दृष्टि में। यह सब उसकी रचना में ध्वनित होते हुए सौन्दर्य से ही संभव हो पाता है, अर्थात् ऊपर की ओर उठते सौन्दर्यरूप स्तर का जो कारणभूत आनंद है, वह आनंद ही वस्तुतः रचनाकार के स्तर को ऊपर उठाने में कारण हुआ करता है।

इस प्रकार काव्य में जो ध्वनि है, वही चमत्कारी है, वही चमक सामाजिकों को प्रभावित करती है। जितनी चमक काव्य में उतना ही सौन्दर्य, जितना ध्वनिरूप सौन्दर्य उतना ही उत्तम काव्य।

भारत में काव्यशास्त्र या आलोचनाशास्त्र का प्रादुर्भाव अत्यन्त प्राचीन काल में हो चुका था। आरम्भिक काल में वेद की तरह यह अविभक्त और समग्र था। संस्कृत-आलोचनाशास्त्र के आदिग्रंथ भरत के नाट्यशास्त्र में साहित्य से साक्षात् सम्बद्ध सभी तत्त्वों से अतिरिक्त तत्त्वों का भी उपादन किया गया है। वहाँ काव्यशास्त्र या अलंकारशास्त्र और नाट्यशास्त्र के रूप में अथवा दृश्यकाव्य, संगीत और कविता के रूप में कोई भेद नहीं किया गया है। किन्तु परवर्ती काल में दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य के भेद से नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र के रूप में आलोचनाशास्त्र दो स्वतंत्र विभागों में विभक्त हो गया। यद्यपि तब भी इन दोनों शाखाओं में रसादि विषयों पर समान रूप से विचार किया गया किन्तु उक्त विचार के उद्देश्य में पर्याप्त अन्तर आ चुका था। नाट्यशास्त्र प्रयोग-विज्ञान के रूप में विकसित हो रहा था जबकि काव्यशास्त्र का मुख्य प्रतिपादय काव्य की परिभाषा, उसके मूल तत्त्व, उसका वर्गीकरण आदि हो चुका था। इसमें भी प्रमुखता काव्य के आत्मतत्त्व के संबंध में विभिन्न विचारधाराओं, यथा रससंप्रदाय, अलंकारसंप्रदाय, ध्वनिसंप्रदाय आदि, के विवेचन को प्राप्त था।

काव्य के हेतु के संबंध में काव्यशास्त्रियों के मध्य मतभेद है। किन्हीं के अनुसार कवित्व जन्मजात होता है और इसलिये काव्य का मूल हेतु है- प्रतिभा जो जन्मजात संस्कार विशेष है। अन्य विद्वानों के अनुसार कवित्वशक्ति जैसे जन्मजात होती है वैसे अर्जित भी की जा सकती है। इनके मत में प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास समुदित रूप से काव्य के मूल हेतु है। इनमें से 'प्रतिभा या शक्ति' नैसर्गिक है, 'निपुणता' लोक और शास्त्र में प्रचलितकविशिक्षा का मूल्यांकन

व्यवहारों के सूक्ष्म और गभीर अध्ययन से प्राप्त होती है तथा काव्यतत्त्वज्जों के निर्देशों के अनुसार किये गये यत्न से 'अभ्यास' की सिद्धि होती है। संस्कृत काव्यशास्त्र के ग्रंथों में आरम्भ से ही इन सभी विषयों पर विचार प्राप्त होता है। अलंकारशास्त्र के ग्रंथ जहाँ एक ओर साहित्यशास्त्र के तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत करते हैं वहीं यह व्यावहारिक निर्देश भी देते हैं कि काव्य रचना के प्रशिक्षु को किस तरह से अभ्यास करना चाहिये, किन-किन विषयों का अध्ययन इस कार्य में सहायक हो सकता है अथवा वे कौन-कौन से प्रचलित शब्द और व्यवहार हैं जिनको काव्य-रचना में आदर दिया जाना चाहिये आदि। उदाहरण के लिये आदय काव्यशास्त्री भामह (१००ई.) ने सर्वप्रथम व्याकरण, छन्दःशास्त्र, कोश, इतिहासाश्रित कथा, लोकव्यवहार, तर्कशास्त्र, ललितकला आदि विषयों की सूची प्रस्तुत की है जिनका ज्ञान काव्य निर्माण में अत्यन्त उपयोगी सामग्री के रूप में ग्राह्य है। आचार्य वामन (८वीं शती) ने भी काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति में ऐसी उपयोगी सामग्रियों की सूची (कारिका १.३से१.२० तक) प्रस्तुत की है जिसमें भामह की सूची के अतिरिक्त नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीति, लोकव्यवहार आदि का भी समावेश है। साथ ही काव्याङ्गों का विचार करते हुए उन्होंने पदों के स्थापन और विकल्प (अवापोद्गाप) आदि प्रयोग का विधान प्रशिक्षुओं के लिये ही किया है। इसी प्रकार देशविरुद्ध, कालविरुद्ध उल्लेखों से बचने का निर्देश, काव्यरचना के लिये आदर्श समय और स्थान का उल्लेख तथा विशेष अर्थदर्शन की प्रक्रिया भी इसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। काव्यशास्त्र में परुष और कोमल वर्णों का निर्धारण, रीतियों की व्यवस्था आदि भी अभ्यासार्थ शिक्षापरक ही हैं। फिर भी इन तत्त्वों की चर्चा प्रासङ्गिक या गौणरूप से ही प्राप्त है। प्रारम्भिक कवियों के लिये व्यावहारिक शिक्षापरक स्वतंत्र विचार इनमें उपलब्ध नहीं था।

राजशेखर (१००ई.) ने अपनी काव्यमीमांसामें सर्वप्रथम कवियों के लिये रचना-तकनीक की व्यावहारिकशिक्षा को स्वतन्त्र महत्व दिया। साहित्यशास्त्र के तात्त्विक विवेचन के साथ ही इसमें साधारण भूगोल, कवियों की प्रचलित प्रथा, ऋतुवर्णन में ध्यान देने योग्य बातें, कविगोष्ठी-वर्णन आदि विषयों की पर्याप्त पर्यालोचना की गयी। कवि के लिये उपयोगी जानकारी देने वाले विश्वकोश सा यह ग्रंथ प्रतीत होता है। फिर भी कवियों के लिये

व्यावहारिकशास्त्र-शिक्षापरकचर्चा यहाँ अलंकार शास्त्र के विषयों से मिला हुआ ही है, इसकी स्वतंत्रता सत्ता नहीं है और यह ग्रंथ अन्य अनेक विषयों को भी समान महत्त्व देते हुए ही विवेचन करता है। अतः इसे कविशिक्षा का मौलिक ग्रंथ स्वीकार करने की अपेक्षा आकर ग्रंथ मानना ही अधिक उपयुक्त है। क्षेमेन्द्र (११वीं शती) ने औचित्य-विचार-चर्चा, सुवृत्तितिलक और कविकण्ठाभरण नाम के ग्रंथों की रचना की। औचित्यविचारचर्चा अधिक अंशों में साहित्यशास्त्रपरक ग्रंथ है जिसमें औचित्य को काव्य का अन्यतम कारण बताया गया है। सुवृत्तितिलक में छन्दों के वर्णन के साथ ही संभवतः छन्दों के प्रभाव का भी वर्णन है और उसमें छन्दों की स्वतन्त्र रूपसे रसोपकारकता का संकेत दिया गया है-

'काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च ।

कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित् ॥ (सु.ति. ३ विन्यास/७)

साथ ही किस कवि का किस छन्द पर विशेष अधिकार है इसकी गणना भी वहाँ की गयी है। कविकण्ठाभरण में कवित्व की प्राप्ति अथवा उसमें उत्कर्षप्राप्ति के उपायों का वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से यह अधिक अंशों में तथा मौलिक रूप में कविशिक्षापरक ग्रंथ माना जा सकता है। हेमचन्द्र (११वीं शती) ने कविशिक्षा के उद्देश्य से काव्यानुशासन ग्रंथ लिखा जो प्रायः संग्रह ग्रंथ सा है। इसमें काव्यमीमांसा आदि से लम्बे-लम्बे अंश उद्धृत हैं। यद्यपि इसमें कविशिक्षापरक काफी सामग्री है पर यह काव्यशास्त्र की तत्त्वमीमांसा से मिली हुई है, शिक्षापरक स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। वाग्भट्टद्वय के ग्रंथ वाग्भट्टालंकार और काव्यानुशासन भी इसी पद्धति पर लिखे गये ग्रंथ हैं। बारहवीं शती में जयमङ्गलाचार्य ने 'कविशिक्षा' नामक अपना ग्रंथ प्रस्तुत किया। पूर्णतः और स्वतंत्र रूप से कविशिक्षा पर लिखा गया यह प्रथम ग्रंथ है। इसमें एक श्लोक अणहिणामपटण के राजा सिद्धराज जयसिंह की प्रशंसा में मिलने से इसकी रचना बारहवीं शती पूर्वार्द्ध में होना सुनिश्चित है। तेरहवीं शती में विजयचंद्र ने 'कविशिक्षा' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। यह इस विषय पर गभीर और स्वतंत्र चिन्तन प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त इससे तत्कालीन इतिहास, भूगोल और मध्यकालीन भारत की साहित्यिक स्थिति की विशद और महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। इसी शती में अरिसिंह और अमरचंद्र यति ने काव्यकल्पलतावृत्ति, परिमलटीका और काव्यकल्पलतामञ्जरी की रचना की। इन ग्रंथों का विषय शुद्ध रूप से कविशिक्षा है। परिमल की रचना यद्यपिकविशिक्षा का मूल्यांकन

काव्यकल्पलता की टीका के रूप में हुई पर इसमें स्वतंत्र और मौलिक चिन्तन बहुशः दृष्ट है। चौदहवीं शती में देवेश्वर की रचना काव्यकल्पलता एवम चिन्तन शती में महादेव की कविकल्पलताटीका और केशवमिश्र का अलंकार सोलहवीं श्रेणी की रचनायें हैं। इनके अतिरिक्त हलायुध का कविरहस्यम्, देवेन्द्र की कविकल्पलता, गङ्गादास की काव्यशिक्षा, सूर्यशर्मा की कविकल्पलता टीका, केशव की कविजीवनम्, कृष्णकवि की चित्रबन्धः आदि रचनायें स्वतंत्र रूप से इस विषय का विवेचन करती हैं और एतत्परक साहित्य को समृद्ध करती हैं। कविकल्पलताविवेक, काव्यविशेष, कविशिक्षावृत्ति, कविता-करणोपायः आदि कुछ ऐसे ग्रंथों का उल्लेख और विवरण भी प्राप्त है जिनके रचनाकार तो अज्ञात हैं पर इनका विषय शुद्ध रूप से कविशिक्षा ही है। इस तरह कविशिक्षा का बीज भरत के नाट्य शास्त्र में ही काव्यशास्त्र-विषय में अन्तर्भूत रूप से प्राप्त होता है। काव्यशास्त्र के अङ्गरूप में ही शनैः शनैः संवर्द्धित होते हुए ग्यारहवीं शती तक यह महत्त्वपूर्ण एवम् पल्लवित विषय के रूप में सुप्रतिष्ठ होता है तथा तेरहवीं शती के पूर्वार्द्ध से ही काव्यशास्त्रीय चिन्तन की स्वतंत्र प्रशाखा के रूप में मान्य हो जाता है।

वैसे तो आरम्भ में कविशिक्षा का विषय काव्य-रचनोपयोगी व्यावहारिक निर्देशों तक सीमित था किन्तु सम्वर्द्धना और स्वतन्त्र सत्ता के साथ ही इसके विषयवस्तु में विस्तार होता गया। फिर भी स्थूल रूप से इसके विषयवस्तु को चार भागों में बाँटा जा सकता है-

(क) छन्द: सिद्धि -

काव्य अधिकांशतः छन्दोबद्ध है। बिना अर्थ-प्रत्यय के भी रसोद्बोधन की इनमें स्वरूपयोग्यता है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में इसका संकेत दिया है कि कौन से छन्द किन रसों या भावों के अनुकूल हैं। क्षेमेन्द्र ने भी इसका विवरण दिया है कि किन कवियों की किस छन्दरचना में विशेष क्षमता है। पर कवि- शिक्षा ने इसे मुख्य प्रतिपाद्य के रूप में अपनाया तथा शब्दार्थ से हटकर वर्ण मात्र का सहारा लेते हुए ध्वनियों के सहारे इसकी सिद्धि की सलाह दी। इसीलिये प्रायः छन्दः सिद्धि को प्रत्येक कविशिक्षा रचना ने अपने प्रथम तीन अध्यायों के अन्तर्गत ही स्थान दिया है। यह विचारणीय है कि विप्रलम्भ शृंगार रस के जितना अनुकूल शार्दूलविक्रीडित, सम्भोग-शृंगार के जितना अनुकूल शिखरिणी, कोमल प्राकृतिक चित्रण के जितना अनुकूल मालिनी आदि छन्द हैं उतना कोई अन्य नहीं।

अपने ध्वनि तथा गति-यति प्रभाव से ही वे इन भावों के उद्बोधन में समर्थ हैं। अतः कविशिक्षा इन छन्दों में झटिति पाटव का तथा अल्पतम परिवर्तन कर एक छन्द से दूसरे छन्द में रचना करने के कौशल का प्रतिपादन करती है। इस विषय पर अत्यधिक शोध की अपेक्षा अभी भी है।

(ख) शब्द-सिद्धि-

विभिन्न शब्दों के प्रभाव का विश्लेषण तथा ऐसे शब्दों का अनुशासन जिनके प्रयोग से झटिति पादपूर्ति, समाससिद्धि या अलंकारसिद्धि अथवा एक से दूसरे छन्द या अलंकार में प्रवेश हो सके- यह कविशिक्षापरक साहित्य का दूसरा प्रमुख प्रतिपाद्य है। साथ ही विभिन्न एकाक्षरशब्दों के प्रयोग, विभिन्न शब्दों के तत्तद् अर्थों का काव्यरचना में विनियोग आदि का निर्देश प्रायः कविशिक्षा का प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है।

(ग) अलंकार-सिद्धि-

इस में विभिन्न अलंकारों की झटिति उपपत्तिपरक शब्दों का व्याख्यान मिलता है। साथ ही बहुप्रचलित अलंकारों के प्रयोग-पाटव में त्वरित नैपुण्य हेतु उपाय सुझाये गये हैं।

(घ) वर्ण-विषय-

विभिन्न वर्णनीय विषयों के संबन्ध में ध्यान रखने योग्य बातों के अतिरिक्त किस वर्णन से कौन सा विषय अलंकृत और चमत्कृत हो सकता है इसका निर्देश भी इस शास्त्र का प्रमुख प्रतिपाद्य है। यद्यपि कविसमय (कवि सम्प्रदाय में प्रचलित मान्यताओं) का पर्याप्त उल्लेख यत्र-तत्र उपलब्ध है किन्तु उन्हें एकत्र कर उनमें परिवर्द्धन-परिवर्तन की संभावनाओं पर विचार करना संप्रति महत्त्वपूर्ण अपेक्षा है।

(ङ) चित्रकाव्य-

चित्रकाव्यों को भले ही काव्यशास्त्र ने अधम काव्य के रूप में स्वीकार किया हो पर कवि शिक्षा के प्रमुख प्रतिपाद्यों में यह एक है। विभिन्न आकृतियों के रूप में छन्द रचना की इस विधा को कविशिक्षापरक कई ग्रंथों ने विशेष महत्त्व दिया है और इनपर सम्पूर्ण अध्याय की रचना की है।

कविशिक्षा का मूल्यांकन

यद्यपि नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र के प्रतिपाद्यों से कविशिक्षा का प्रतिपाद्य सर्वथा भिन्न है और इस रूप में यह उन शास्त्रों का अङ्ग प्रतीत होता है पर यह सुविदित है कि किसी कार्य के होने में साध्य, साधन याता इतिकर्तव्यता का ज्ञान अनिवार्य रूपेण अपेक्षित है। इनमें भी यदि इतिकर्तव्यताज्ञान न हो तो प्रवर्तना सही रूप से नहीं हो सकती है। उक्त शास्त्रों के सन्दर्भ में कविशिक्षा को भले ही अङ्ग या साधन मात्र माना जाये पर काव्यरचनातकनीक के विशिष्ट अध्ययन के कारण कविशिक्षा को स्वतंत्र शास्त्र मानना सर्वथा उपयुक्त है। यह काव्यरचनाधर्मिता का अनुशासन होने से शास्त्र कोटि में स्वीकार्य है। काव्य शास्त्र के उपपाद्यों की झटिति उपपत्ति का प्रतिपादक शास्त्र होने से इसे नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र की तरह ही काव्यशास्त्रीय चिन्तन की तृतीय प्रशाखा के रूप में मान्य किया जाना सर्वथा उपयुक्त हो सकता है।

The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal

(A Peer Reviewed and Indexed Journal with Impact Factor 3.9)

www.expressionjournal.com ISSN: 2395-4132

संदर्भ ग्रंथ सूची

- १ काव्य प्रकाश -आचार्य मम्मट विरचित विश्वेश्वर टीका (चौखंबा प्रकाशन वाराणसी 2002)
- २ अलंकार शास्त्र -आचार्य भाहम (विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक बाजार वाराणसी 2006)
- ३ साहित्य दर्पण -आचार्य विश्वनाथ विरचित (शारदा प्रकाशन वाराणसी 2001)
- ४ नाट्यशास्त्र -आचार्य भरत मुनि (चौखंबा प्रकाशन चौक बाजार वाराणसी 2004)
- ५ रस गंगाधर -आचार्य जगन्नाथ (चौखंबा प्रकाशन चौक बाजार वाराणसी 2004)